**समक्ष :** ***माननीय एच. एस. बेदी, एम. एस. लिब्रहान,***
**न्यायमूर्ति**
***प्रेम सागर बत्रा,-याचिकाकर्ता,***
***बनाम***
**महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक और *अन्य,-***
***प्रतिवादी।***
***1991 की सिविल रिट* याचिका संख्या 16372**
**10 मार्च, 1992**

*भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226 और 227- अतिरिक्त सीटों का सृजन-विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के बच्चों के लिए ऐसी सीटों का आरक्षण-ऐसा आरक्षण शून्य- क्या अतिरिक्त सीटें समाप्त मानी जाएंगी -ऐसी सीटों के खिलाफ प्रवेश।*

*यह अभिनिर्धारित किया गया कि विश्वविद्यालय ने अपने संसाधनों को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त 15 सीटों का सृजन किया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि आरक्षण को समाप्त करने पर उक्त सीटों को भी समाप्त माना जाना चाहिए।*

(अनुच्छेद 5)

*इसके अलावा,* यह अभिनिर्धारित किया गया कि इस न्यायालय के आदेश से जो लाभ प्राप्त होना है, वह केवल ऐसे व्यक्तियों तक ही सीमित होना चाहिए जो अपने अधिकारों को सही साबित करने के लिए न्यायालय आए हैं।

(अनुच्छेद 6)

याचिकाकर्ताओं की ओर *से अधिवक्ता नितिन कुमार,*
*वरिष्ठ अधिवक्ता अशोक अग्रवाल* के *साथ* अधिवक्ता विक्रांत शर्मा, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के लिए, प्रतिवादी की ओर *से*|

## निर्णय

*एच. एस. बेदी,* न्यायमूर्ति

(1) इस निर्णय के तहत - सी. डब्ल्यू. पी. संख्या 1991 का 1 16177, 16372 और 1992 का 84 का निपटारा किया और निपटारा करने के लिए , मामले के तथ्य सी. डब्ल्यू. पी. 16372/1991 से लिए गए हैं।

(2)जुलाई/अगस्त, 1991 में प्रतिवादी विश्वविद्यालय द्वारा शैक्षणिक वर्ष 1991-92 के लिए एल. एल. बी. पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष में प्रवेश के लिए पचास सीटों का विज्ञापन किया गया था। जबकि 25 सीटें सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए खुली छोड़ दी गई थीं, *जैसे* कि याचिकाकर्ता जो हरियाणा राज्य के प्रामाणिक निवासी थे, शेष सीटें विभिन्न श्रेणियों के लिए आरक्षित थे, जिनमें 3 सीटें विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिए आरक्षित थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद विश्वविद्यालय ने अतिरिक्त 19 सीटें सृजित कीं-ऊपर उल्लिखित आरक्षित श्रेणी के लिए 15 और पूर्व सैनिकों के लिए 4। याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट

याचिकाएं दायर की हैं जो अतिरिक्त 15 सीटों के निर्माण को चुनौती देती हैं और साथ ही विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों की श्रेणी के लिए तीन सीटों के मूल आरक्षण के खिलाफ भी हैं।

(3) सी. डब्ल्यू. पी. 16372/1991, 6 जनवरी, 1992 को आर. एस. मोंगिया, जे. के समक्ष आया, जब याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिए आरक्षण इस अदालत के निर्णयों को देखते हुए धारणीय नहीं *है जो (1)* परवीन *हंस बनाम कुलसचिव, पंजाब विश्वविद्यालय,* चंडीगढ़ *में दिए गए* हैं। *(2)* सुनील *के. एस. पंवार बनाम कुलसचिव,* पंजाब *विश्वविद्यालय चंडीगढ़, (3)* डॉ. *अरप्पना गिल बनाम* पंजाब राज्य *और* (4) *तविंदर कुमार* और *एक अन्य बनाम* पंजाब विश्वविद्यालय । इस आधार पर यह आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ता 18 आरक्षित सीटों के खिलाफ प्रवेश के हकदार थे क्योंकि उनके खिलाफ भर्ती किए गए उम्मीदवार तुलनात्मक रूप से कम मेधावी थे।

(4) हालांकि, प्रतिवादी के वकील ने तर्क दिया था कि 15 अतिरिक्त सीटें विशेष रूप से विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों की श्रेणी के लिए बनाई गई थीं और यदि अदालत का विचार था कि आरक्षण धारणीय नहीं था, तो सीटें बनाई गईं समाप्त हो जाएगा और कोई भी उम्मीदवार उनके विरुद्ध प्रवेश के लिए विचार किए जाने का हकदार नहीं होगा। यह भी आग्रह किया गया कि भले ही आरक्षण को खराब माना गया हो,

याचिकाकर्ता वास्तव में प्रवेश के हकदार नहीं थे क्योंकि *अन्य* जो योग्यता में उच्चतर व्यक्ति थे, जो अदालत में नहीं आए थे, लेकिन अन्यथा प्राथमिकता के आधार पर प्रवेश की पेशकश के हकदार थे। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पाया कि मामले की एक डिवीजन बेंच द्वारा जांच और समझौते की आवश्यकता है 6 जनवरी, 1992 के आदेश के अनुसार निम्नलिखित दो प्रश्नों को निर्णय के लिए खण्ड पीठ को भेजा गया:—

(i) यदि सीटों का सृजन किसी विशेष श्रेणी के लिए है और ऐसी श्रेणी के लिए आरक्षण धारणीय नहीं है, तो क्या सृजन ही चला जाएगा?और

(ii) यदि याचिकाकर्ताओं की तुलना में योग्यता में उच्च उम्मीदवार जो अदालत नहीं आए हैं, तो क्या ऐसे उम्मीदवार राहत के हकदार हैं?

ऊपर बताए गए दो बिंदुओं पर मामला अब हमारे सामने है।

(5) प्रत्यर्थी-विश्वविद्यालय के वकील द्वारा हमारे समक्ष यह स्वीकार किया गया है कि विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिए आरक्षण, ऊपर उल्लिखित इस न्यायालय के निर्णयों को देखते हुए धारणीय नहीं है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि विश्वविद्यालय ने उपरोक्त निर्णयों के अनुसार आगामी शैक्षणिक वर्षों में इस तरह का आरक्षण नहीं करने का निर्णय लिया है। याचिकाकर्ताओं के वकील ने इस स्वीकृत स्थिति में आग्रह किया है कि चूंकि वर्तमान मामले में आरक्षण अस्थिर है, इसलिए याचिकाकर्ता उन सीटों के खिलाफ प्रवेश पाने के हकदार हैं जिन्हें उस श्रेणी से

गलत तरीके से भरा गया है, यदि आवश्यक हो तो भर्ती किए गए लोगों के चयन को रद्द करके। यह आग्रह किया गया है कि अतिरिक्त 15 सीटों का सृजन इस तथ्य का संकेत है कि इन सीटों को समायोजित करने के लिए विधि विभाग के पास उचित क्षमता उपलब्ध थी और विश्वविद्यालय को यह कहते हुए अपनी गलती का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी कि चूंकि सीटें एक विशेष श्रेणी के लिए बनाई गई थीं, इसलिए आरक्षण को अनुचित पाए जाने के कारण उन्हें चूक माना जाना चाहिए। हम इस तर्क में योग्यता पाते हैं। हमारा विचार है कि विश्वविद्यालय के रुख को प्रतिग्रहण करना और हमारा मानना कि याचिकाकर्ता, हालांकि सफल हैं, फिर भी उन्हें इस अदालत से अति-तकनीकी तर्क पर कोई राहत नहीं मिलना अन्यायपूर्ण और अनुचित होगा । हमारा विचार है कि विश्वविद्यालय ने अपने संसाधनों को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त 15 सीटों का सृजन किया था और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि आरक्षण को समाप्त करने पर उक्त सीटों को भी समाप्त माना जाना चाहिए। यह ध्यान देने योग्य है कि चुनौती विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिए आरक्षण की है, न कि अतिरिक्त सीटों के निर्माण की। विश्वविद्यालय को एक उदास और निर्दयी वादकारी की तरह काम करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, जो हारने के बाद भी सफल दलों को जीत के फल से वंचित करने का प्रयास करना चाहिए।

(6) याचिकाकर्ताओं के वकील द्वारा खण्ड पीठ को संदर्भित दूसरे बिंदु पर यह आग्रह किया गया है कि जो

लाभ

इस न्यायालय के आदेश से प्रवाहित होने के लिए केवल ऐसे व्यक्तियों तक ही सीमित होना चाहिए जो अपने अधिकारों को सही साबित करने के लिए न्यायालय आए हैं। इस प्रस्ताव के लिए भरोसा *सुश्री नीलिमा शांगिया* बनाम *हरियाणा राज्य (5)* और परमजीत *सिंह बनाम* गुरु *नानक देव विश्वविद्यालय और अन्य (6)* पर रखा *गया है। नीलिमा शांगिया* के मामले (उपरोक्त) में, जिसका *अनुसरण परमजीत सिंह* के मामले (सुप्रा) में किया गया था, उच्चतम न्यायालय को यही कहना था:—

> "लेकिन इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि अधिकांश अन्य लोगों ने चयन पर सवाल उठाने के लिए नहीं चुना है और दो साल बीत जाने के बाद की परिस्थितियों को देखते हुए, हम ऐसा कोई सामान्य आदेश देने का अनुमान नहीं लगाते हैं जो बाद के चयन को पूरी तरह से परेशान करेगा और भ्रम और कई समस्याएं पैदा करेगा। किसी भी अन्य उम्मीदवार के मामले, जिन्होंने पहले ही इस अदालत या उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर की हो, इस फैसले के आलोक में निपटाए जाएंगे। जिन लोगों ने अभी तक चयन पर सवाल उठाने का विकल्प नहीं चुना है, उन्हें भविष्य में, अपनी लापरवाही के कारण, ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जाएगी।"

ऊपर उद्धृत अनुच्छेद से यह देखा जा सकता है कि ये टिप्पणियां सिविल सेवा में नियुक्ति के संदर्भ में की गई थीं, जिसमें चयन और उच्चतम न्यायालय के आदेश के बीच दो साल की देरी को उन व्यक्तियों के संबंध में घातक माना गया था जो अदालत में नहीं आए थे।हमारा विचार है कि

किसी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश के मामले में, नियम कहीं अधिक कठोर होंगे- पाठ्यक्रमों की अवधि सीमित होने के कारण-और इस तरह से प्रभावित व्यक्तियों को चयन के तुरंत बाद अदालत में आना चाहिए, जिसमें विफल रहने पर अदालत हस्तक्षेप करेगी।

(1) प्रतिवादी के वकील श्रीमान अशोक अग्रवाल, ने *जवाब में* दो *बिंदु रखे* हैं। चंडीगढ़ प्रशासन बनाम मनप्रीत सिंह (7) पर भरोसा करते हुए, उन्होंने आग्रह किया है कि एक बार आरक्षण खराब होने के बाद, जो सीटें खोली जाती हैं, वे उम्मीदवारों को योग्यता के अनुसार दी जानी चाहिए, चाहे वे अदालत में आए हों या नहीं। उन्होंने यह भी आग्रह किया है कि वास्तव में, कई दीवानी मुकदमे भी दायर किए गए हैं जिनमें इन रिट याचिकाओं में मांगी गई राहत का दावा किया गया है और इस तरह इन मुकदमों में वादी के अधिकारों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हमने मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आलोक में इन तर्कों की जांच की है। श्री अग्रवाल का पहला तर्क उनके द्वारा उद्धृत निर्णयों से समर्थित नहीं है और इस तरह उनका कोई फायदा नहीं है। उस मामले में उच्च न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ताओं के पक्ष में मामले का फैसला करने से पहले अस्थायी प्रवेश प्रदान किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपील को स्वीकार करते हुए निर्देश दिया कि योग्यता के आधार पर छूटने वालों को प्रवेश दिया जाए। हालाँकि यह ध्यान दिया जाएगा कि, हमारे समक्ष मामले में, याचिकाकर्ताओं द्वारा आरक्षण को ही सफल चुनौती दी गई है और केवल उन्हें ही लाभ मिलना चाहिए। इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने कानून के तौर पर यह निर्धारित नहीं किया कि श्री अग्रवाल हमसे क्या अभिनिर्धारित करवाना

चाहते हैं, हालांकि, हमारी राय है कि दीवानी मुकदमों में वादी और हमारे सामने रिट याचिकाएं अदालत में आने के बाद एक श्रेणी के रूप में माने जाने के हकदार हैं और इसलिए सफल होना चाहिए।

ऊपर जो दर्ज किया गया है उसे ध्यान में रखते हुए, इन रिट याचिकाओं की अनुमति दी जाती है। विश्वविद्यालय के कर्मचारियों और उनके बच्चों के लिए सीटों का आरक्षण गलत माना जाता है, लेकिन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निजी प्रतिवादी को दिए गए प्रवेश को बाधित नहीं किया जा रहा है।

(6) यह भी निर्देश दिया जाता है कि रिट याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ दीवानी मुकदमों में वादी को भी वर्तमान शैक्षणिक वर्ष में प्रवेश दिया जाएगा और यदि नियम अनुमति देते हैं तो उन्हें परीक्षा देने की अनुमति दी जाएगी। प्रतिवादी द्वारा इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने के बाद दो सप्ताह की अवधि के भीतर पूरी कवायद पूरी कर ली जाएगी। रिट याचिकाओं की लागत रुपये आंकी गई है। प्रत्येक प्रतिवादी संख्या 1 और 2 से 1,000 की वसूली की जाएगी। फैसले की प्रति याचिकाकर्ता दस्ती को दी जाए।

*एस. सी. के.*

(1) 1990 (1) आर. एस. जे 405
(2) 1990 (1) आर. एस. जे. 812
(3) 1991 (1) आई.आर.एस.जे. 304.
(4) 1991 (1) जे.आर.एस.जे. 555.

(5) ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 169.

(7) 1989 (2) सी. एल. जे 383

(8) 1991 (4) जे. टी. 43

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा

प्रांशु जैन
प्रशिक्षु न्यायिक
अधिकारी, गुरुग्राम,
हरियाणा ।